ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

दलित विमर्श

Dr.Smt.K.CHANDRA, Lecturer in Hindi, STSN GDC, KADIRI, Ananthpur (Dist.) Andhra Pradesh

दलित साहित्य वर्तमान का ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को समझना ग़लत होगा। भारी संख्या में इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित होना यह बताता है कि यहाँ भी कम चेतना नहीं है बस बोलने का मौक़ा नहीं दिया गया। आज दलित विमर्श हिन्दी का ही नहीं, हिन्दी प्रदेश की सीमाओं से बाहर निकालकर बड़ा स्वरूप ले चुका है, जिसका मूल उद्देश्य है दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को जनता के सामने लाना। सम्पूर्ण भारतीय भाषा में दलित लेखन तेज़ी से हो रहा है। 'दलित साहित्य' के लेखन में किस-किस को शामिल किया जाए यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। दलित साहित्यकारों का मनाना है कि दलित की पीड़ाओं को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है, यानि कि अनुभूति के आधार पर, जबकि दूसरा खेमा दलितों से इतर लिखे गए साहित्य को, जो दलित जीवन पर उसी भी उसमें शामिल करने की बात कर रहा है। हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा में 'दलित विमर्श' का मुद्दा अस्सी के दशक में उभरा जो नब्बे तक आते-आते काफी चर्चित हो चुका था। साहित्य की बहुचर्चित पत्रिका 'हंस' में दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुई जो आलोचकों और पाठकों में बहुत चर्चित हुई। 1997 में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के रूप में प्रकाशित किया जो बहुत चर्चित हुआ। यहीं से दलित साहित्य, विमर्श का मुद्दा बन गया। दलित साहित्य में दलित साहित्यकार अपने जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करते हैं, जिसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि पूरी दुनियाँ यह जाने के उनके साथ क्या दुर्व्यवहार हुआ है। विख्यात दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है- "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन-संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"[1]

हिन्दी साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं को साहित्य में आरंभ से उठाया जा रहा है। आज़ादी से पहले प्रेमचंद, निराला, यशपाल आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में हाशिए के समाज के पक्ष में मज़बूती से लिखा। आज़ादी के बाद जब भारतीय समाज की तस्वीर काफ़ी बदली मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, नैमिशराय, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पुन्नी सिंह, प्रेम कपाड़िया, डॉ. दयानंद बटोही, डॉ. तेज सिंह, बाबूलाल खंडा, रामचंद आदि चर्चित रचनाकार हैं। महिला कथाकारों में उषा चन्द्रा, रमणिका गुप्ता, रजत रानी 'मीनू', मैत्रेयी पुष्पा, सुभद्रा कुमारी जैसे रचनाकार इसमें शामिल होकर मज़बूत लेखन किया। प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं में दलित जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। छुआछूत, जात-पात, आडंबर, कर्म-कांड आदि का वह ख़ूब विरोध करते रहे। उनकी कहानियाँ सद्गति, कफ़न, 'ठाकुर का कुआँ' आदि में दलित जीवन को त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गया है और साथ ही उनके साथ अन्याय करने वाले ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोगों को भी आड़े हाथों लिया है। 'सदगति' में प्रेमचंद ने जहाँ चमारों पर हो रहे शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया है वहीं 'पूस की रात', 'कफ़न' में दलित प्रतिरोध को साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकता है। हालाँकि दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नहीं करते क्योंकि उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी भी दलित जीवन की पीड़ाओं को नहीं झेला- "दलित साहित्य में प्रेमचंद की परम्परा नहीं चलने वाली है। दलितों के बारे में प्रेमचंद का सत्य चिड़िया की आँख से देखा हुआ सत्य था। आज दलित अपने अनुभव से गुज़र कर लिख रहा है। दलितों को जो मज़बूती मिली है वह धर्मवीरजी और आम्बेडकरजी से मिली है। जब डॉ.आम्बेडकर ने दलितों के लिए मंदिरों के दरवाज़े खोलने की लड़ाई लड़ी तब भी प्रेमचंद आम्बेडकर के साथ नहीं गाँधी के साथ खड़े थे। बाद में डॉ. आम्बेडकर ने कहा कि उनकी लड़ाई सिर्फ़ इतनी थी कि दलित भी भारतीय हिन्दू समाज का हिस्सा हैं इसलिए उन्हें भी मन्दिर जाने का हक़ होना चाहिए।"

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

प्रेमचंद के बाद सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का उपन्यास 'चतुरी चमार', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' आदि रचनाएँ दलित चेतना से परिपूर्ण हैं। उनकी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' हिन्दी कविता के इतिहास का मील का पत्थर है। इसके साथ ही यशपाल की कहानी 'परदा', राहुल सांकृत्यायन की 'पुजारी', 'प्रभा और सुमेर' भी दलित जीवन की अभिव्यक्ति करती हैं।

दलित साहित्य को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला भोगे हुए यथार्थ के आधार पर। दूसरा उनका लिखा गया जो साहित्य नहीं है। तीसरा स्तर विचारधारा का है। क्या प्रगतिशील होकर दलित साहित्य लिखा जा सकता है? हालाँकि यह सवाल बहुत उलझा हुआ है और बुनियादी भी है। क्योंकि विचारधारा के स्तर पर तो दलित साहित्यकार व आलोचक, चिंतक प्रगतिशील यानी मार्क्सवाद का भी बहुत महत्व नहीं हैं क्योंकि उनका मानना है कि इसमें अधिकतर सवर्ण लोग ही हैं। विख्यात दलित साहित्यकार माता प्रसाद का मानना है कि- "दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य और असहाय है, पर साहित्य की रचनाएँ हैं, वही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इसमें बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती हैं। दलित साहित्य वेदना, चीख और छटपटाहट का साहित्य है।"[3]

दलित साहित्य का विस्तार हिन्दी साहित्य में आने के बाद ही हुआ। 'अपने-अपने पिंजरे' 'मैं भंगी हूं', 'जूठन', 'तिरस्कृत', 'दोहरा अभिशाप', मुर्दहिया, मणिकणिका, जूठन भाग दो आदि आत्मकथाओं ने साहित्य प्रकाशित होते ही सबका ध्यान अपनी तरफ़ खींचा। दलित लेखन का आरंभ सबसे पहले मराठी भाषा में ही हुआ, जिसका आधार आंबेडकर की वैचारिकी और उनका जीवन संघर्ष है। मराठी भाषा में दो सौ से अधिक दलित आत्मकथाएँ लिखी जा चुकी हैं। हिन्दी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं में आत्मकथाएँ बड़ी मात्रा में लिखी जा रही हैं। आत्मकथा पाठकों को तो अपने आपसे जोड़ा ही बल्कि उन्हें सोचने पर भी विवश किया। देश के बाहर के पाठकों ने यह महसूस किया कि विश्वगुरु कहे जाने वाले देश में कितनी अमानवीयता है। दलितों ने सिर्फ़ लेखन के मध्यम से ही पाठकों का विस्तृत संसार विकसित कर लिया। दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य सिर्फ़ अभिव्यक्ति के लिए नहीं है बल्कि एक सम्पूर्ण आंदोलन की तरह है- "दलित साहित्य का समाज बोध पाठक और श्रोता की चेतना एवं अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही पूरा होता है। साहित्य पर समय और समाज का स्पष्ट प्रभाव होता है। साहित्य की रचनाओं में मनुष्य की मस्तिष्क पर पड़नेवाले जीवन और जगत की घटना और स्थितियों का ही प्रतिबिंब होता है। दलित साहित्य की मान्यता है कि कला या साहित्य को सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए कला सृजन में आगे बढ़ना चाहिए। इस दृष्टि से दलित साहित्य शुद्ध कला न होकर एक सामाजिक आंदोलन है।"[4]

दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आज़ादी के लिए लिख रहे हैं। जाति, नस्ल या रंग के आधार हो रहे भेदभाव को वह ख़त्म करना चाहता है। दलित साहित्यकार चाहता है कि समाज में धर्म, सत्ता दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता घोषित न किया जाए। सम्पूर्ण रूप में देखें तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है- "जाति एक ऐसा राक्षस है जो आपका रास्ता काटेगा। जब तक आप इस राक्षस को नहीं मारते तब तक आप न तो कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं और न ही आर्थिक सुधार कर सकते है।"[5]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहानी की यात्रा सबसे अधिक रोमांचक और परिवर्तनशील रही है। समय और समाज की बदलती सोच ने सबसे पहले कहानी को ही बदला। बीसवीं सदी के कुछ वर्ष पूर्व ही आरंभ हुई कहानी का लोकजीवन और लोकभाषा के समन्वय से होता है। इस दौर की कहानियाँ तिलिस्मी और लोककथाओं की आंतरिक संवेदना से पूर्ण थीं। हिन्दी कहानी की यथार्थवादी यात्रा प्रेमचन्द के आगमन से आरंभ होती है। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को आम जनता के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। ग्रामीण जीवन की मार्मिक कथा को साहित्य में प्रस्तुति देने के कारण ही प्रेमचंद को कथा सम्राट कहा गया। प्रसाद ने ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर तत्कालीन सामाजिक समस्या को जीवंत किया। उसके बाद नई कहानी, अकहानी, संचेतन कहानी, समांतर कहानी, अकहानी जैसे कहानी युगों ने कहानी की संवेदना और भाषा को कई पड़ावों की यात्रा करवाई। हिन्दी कहानी में दलित जीवन उपेक्षित रहा। दलित पात्रों का सृजन तिरस्कार भाव से हुआ। प्रेमचंद की पूस की रात कफ़न, सद्गति, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, मंत्र जैसी कहानियों में

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

दलित जीवन की विडंबनाओं को स्थान मिला ही। कफ़न और सद्गति ने दलित विमर्श में अपनी उपस्थिती दर्ज की लेकिन कुछ दलित कहानीकारों ने इसे दलित कहानी माना ही नहीं।

दलित साहित्य का आरंभ 1980 के बाद आत्मकथा लेखन से हुआ। कथाकार राजेंद्र यादव ने विख्यात दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित आत्मकथा 'जूठन' को कई अंशों में हंस में प्रकाशित किया जिसने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपना स्थान बनाया। अस्सी के अंतिम दशक में ही दलित कहानी का आरंभ होता है जिसमें 'ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह 'बेचैन', रत्नकुमार सांभरिया, कालीचरण सनेही, रूपनारायण सोनकर आदि का नाम उभरकर सामने आता है। युवा कहानीकारों में अजय नावरिया अनीता भारती, दिलीप काठेरिया, कैलाश वानखेडे आदि का नाम लिया जा सकता है।

दलित कहानियाँ दलित जीवन को न केवल अभिव्यक्त करती हैं बल्कि अपने आस-पास के समाज का भी चित्रण करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि न केवल दलित साहित्यकार हैं बल्कि आलोचक और चिंतक भी हैं। 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' उनकी बहुचर्चित पुस्तक जिसमें वह दलित साहित्य की अंतरयात्रा को बख़ूबी समझाते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि दलित साहित्यकार ही दलित साहित्य लिख सकता है। वह अनुभूति पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। 'सलाम' ऐसी ही कहानी है जो अनुभूति की प्रामाणिकता को प्रस्तुत करती है। वह न केवल दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति करती है बल्कि सवर्ण मानसिकता को भी प्रस्तुत करती है। 'सलाम' कहानी में परंपरा का विरोध और दलित प्रतिरोध को समझा जा सकता है। इस कहानी में परंपरा अनुसार शादी होने के बाद लड़का सभी उच्च घर वालों के घर के सामने से गुज़रता है और उन्हें सलाम करता है, जिससे प्रत्येक घर से उसे कुछ न कुछ मिलता है। शहर में पढ़ा-लिखा दलित लड़का गाँव की अपमानित परंपरा का विरोध करता है और 'सलाम' करने नहीं जाता है जिसके कारण उसे कई तरह से प्रताड़ित करने का प्रयास किया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस कहानी में वर्चस्व की सत्ता को न केवल ठुकराते हैं बल्कि चुनौती भी देते हैं। सदियों से दमित अस्मिताओं और पीड़ित जनसमुदाय को एक दिशा देने का प्रयास करते हैं। यह कहानी केवल दलित जाति ही की नहीं बल्कि मुस्लिम जाति के वर्ग-भेद को व्यक्त करते हैं। कहानी के अंतिम में मुस्लिम पात्र भी दलितों के साथ बुरा व्यवहार करता है।

रूपनारायण सोनकर एक ऐसे दलित साहित्यकार हैं जिनकी रचनाएँ प्रेमचंद की रचनाओं से मुठभेड़ करने की कोशिश करती हैं। 'गोदान' की ही तर्ज़ पर लिखा गया इनका 'उपन्यास' 'सूअरदान' दलित साहित्य में बहुत चर्चित रहा। प्रेमचंद के ही कहानी 'सद्गति' नाम से लिखी सोनकर की कहानी 'सद्गति' कहानी सांप्रदायिकता को बढ़ाने वाले कुछ कुपात्रों की कहानी है। सोनकर की यह कहानी केवल दलित समाज ही नहीं वरन सम्पूर्ण समाज में धार्मिक आस्था को ठेस पहुँचाने तथा उसके नाम पर लोगों के हृदय में नफ़रत भरने वाले लोगों का पोल खोलती है। दलित कहानीकारों की एक विशेषता यह है कि वह सिर्फ़ समस्या नहीं उठाते हैं बल्कि उसका निदान भी प्रस्तुत करते हैं। इसी कहानी का मुस्लिम पात्र शब्बीर, जो किन्हीं कारणों से समाज में धर्म के नाम पर उन्माद फैलता है। जब उसे अपनी ग़लती का एहसास होता है तो माफ़ी भी माँगता है- "मैंने गुनाह किये हैं। मैं मानवता को भूल गया था। स्वार्थ, अंधा धर्म और मज़हब ने मुझे बिलकुल अंधा कर दिया था। हम दोनों समुदाय के लोग भाई-भाई हैं। मैंने अपने भाइयों को मारकर बहुत बड़ा अपराध किया है। मुझे सज़ा मिलनी चाहिए।"

दलित कहानी समाज के फैली विसंगतियों और अराजकता को ख़त्म करने का मार्ग भी खोजती है। अम्बेडकर दलित साहित्य के आधार हैं उनकी विचारधारा ही दलित कहानियों का प्राण तत्व है। उनका साहित्य और सम्पूर्ण लेखन दलित जीवन को सम्मान और अधिकार दिलाने के लिए लिखा गया है। वह जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करना चाहते थे तथा उसके नाम पर फैलाये जा रहे सांप्रदायिक परिवेश के भी ख़िलाफ़ थे। उनका मानना था- "जाति ने हालाँकि एक काम किया है। इसने हिन्दू समाज को पूरी तरह से असंगठित और अनैतिक अवस्था में ला दिया है। ...यह तो जातियों का समूह मात्र है। प्रत्येक जाति अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। इनका अस्तित्व जाति-व्यवस्था के जारी रहने का कुल परिणाम है। जातियाँ एक संघ भी नहीं बनातीं। कोई जाति दूसरी जातियों से जुड़ने की भी भावना नहीं रखती, सिर्फ़ हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय ये आपस में जुड़ती हैं।"[6]

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

दलित कहानियाँ दलित जीवन में जबरन भर दिये गए अपमान और तिरस्कार के विरोध में अपनी आवाज़ बुलंद करती हैं साथ ही दलित समाज की अपनी विसंगतियों को भी अभिव्यक्त करती हैं। दलित साहित्यकारों ने अपने समाज में फैले आडंबर और सामंतवादी मानसिकता को भी ख़त्म करने का आह्वान किया है- "दलित समाज को अपनी मुक्ति के लिए सवर्णों से ही नहीं अपितु स्वयं से ही भी संघर्ष करना पड़ेगा। यह बहुत पीड़ा दायक और मुक्ति की राह में बड़ी रुकावट है।"[7]

जितने भी दलित साहित्यकारों ने समाज और साहित्य में अपना सम्मानित स्थान बनाया है, सभी ने शिक्षा के बल पर यह स्थान प्राप्त किया है। शिक्षा दलित समाज की बुनियाद को मज़बूत करती है। दलित साहित्यकारों ने यह प्रेरणा भी बाबा साहब से ली है। आंबेडकर दलितों को शिक्षित करनेके सभी प्रयासों के लिए प्रतिबद्ध से सरकारी, ग़ैर-सरकारी संस्थाओं के साथ अपने व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा वह उन्हें शिक्षित करना चाहते थे। शिक्षा द्वारा ही दलितों और स्त्रियों में अपने अधिकार और अस्मिता को समझने की चेतना आयी। डाली शिक्षा द्वारा ही स्वयं के अधिकारों के लिए संघर्ष के लिए एकत्र हुए। आंबेडकर कहते थे- 'शिक्षित बनो', 'संगठित हो' और 'संघर्ष करो' एवं 'अप्पो दीपो भव' अर्थात् 'अपना दीपक स्वयं बनो'! बाबा साहब के इन्हीं शब्दों ने सदियों से शोषित दलितों के अंदर सोयी हुई उदासीनता को तोड़कर उन्हें संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। आंबेडकर का मानना था कि "प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत ज़रूरी भी है।"[8]

दलित समाज जान चुका है कि शिक्षा उसका बुनियादी आधार है। अभी तक तो वह मानकर चल रहा था कि शिक्षा उनके लिए है ही नहीं। जब उसे अपना अधिकार पता चला तो उसने अपने प्रति होने वाली असामनता का विरोध आरंभ किया- "आप लोग हमारे मुहल्ले के लड़कों को इस तरह डोम कहकर अलग-अलग बैठा नहीं सकते।"[9]

लेकिन सदियों से उनपर अत्याचार करने वाला समाज यह कब समझ पाया? उसकी सोच कब बदली? उसने उनके साथ हमेशा यही व्यवहार किया जो सदियों से करता आया है। जब दलित समाज अपना अधिकार माँगता है तो उसे गालियाँ ही सुननी पड़ती हैं- "क्यों रे क्यों दौड़ गया था रे हरामी का पिल्ला। दो-चार हाथ कस के पड़ेंगे तो जानेगा साला कि डोम लोगों को अलग-अलग क्यों बैठाया जाता है।"[10] जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य के बड़े लेखक हैं। इनकी कहानियाँ दलित जीवन के समाजशास्त्र को बेहतर ढंग से समझाने का प्रयास करती हैं। हैं। कर्दम जी की बहुचर्चित कहानी 'नो बार' शिक्षित, नौकरी-पेशा दलित युवक की कहानी है जो अपनी शादी के लिए अख़बार में विज्ञापन देखता है। जिसमें से एक रिश्ता उसे पसन्द आता है। विज्ञापन में स्पष्ट है कि जाति का कोई बंधन नहीं है युवक अपनी शादी हेतु संबधित पते पर पत्र लिखता है जहाँ उसे बुलाया भी जाता है, जहाँ वह अपने कुशल व्यवहार और शिक्षित व्यवहार से लोगों का मन जीतने में सफल भी होता है लेकिन जैसे ही पता चलता है कि वह दलित है, लड़की का पिता भड़क जाता है। हालाँकि बेटी उसका पक्ष लेते हुए कहती है- "क्यों पापा, जब हम जाति-पांति को मानते ही नहीं तो" उसका पिता जवाब देता है- 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार-चूहड़े के साथ...।" यह कहानी उच्च वर्ग के अंदर बैठे कुत्सित भाव की अभिव्यक्ति करता है जो ऊपर से तो प्रगतिशील होने का नाटक करते हैं लेकिन अंदर से जाहिल और जातिवादी होते हैं।

दलित कहानियों में दलित साहित्यकार अपने अंदुरूनी समाजिक समस्या को भी मज़बूती से व्यक्त करता है। वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ सम्पूर्ण विश्व ग्राम की कल्पना में तब्दील हुआ है, वहीं दलितों का शोषण बढ़ा है। डॉ. सी.बी. भारती वरिष्ठ दलित साहित्यकार हैं। उनकी कहानी 'भूख' बंजारा समाज की महिलाओं के हो रहे शोषण को दिखाया है। इस कहानी में पितृसत्ता की क्रूर व्यवस्था का भी चेहरा प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी की मुख्य महिला पात्र का पिता उसे पैसों के लालच में ऐसे हाथों में बेच देता है जो उसका ग़लत प्रयोग करना चाहते हैं।

यह दलित साहित्य की सीमा कह लें या फिर चुनौती, दलित महिलाएँ कहानी विधा में अभी बड़े स्तर पर कार्य नहीं कर पा रही है। दलित महिलाएँ आज भी पितृसत्ता, जातिवाद, अशिक्षा और ग़रीबी में अपना जीवन बिता रही हैं। समाज में उनके प्रति एक घृणा का भाव अभी भी बना हुआ है- "दलित स्त्री की निम्न स्थिति और

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

अधीनता को गुलामी का पर्याय बनाने में पुरुष सत्ता ने मानवता को शर्मसार किया है लेकिन देश की आज़ादी दलित स्त्री को स्वाधीनता लौटने में समर्थ नहीं हो पायी। "[11]

दलित महिला लेखन में कहानीकारों की कमी है। अधिकतर दलित महिलाएँ कविता विधा में लेखन कर रही हैं। वह इस दिशा में व्यापकस्तर पर प्रयास करेंगी तो निश्चय ही दलित समाज की स्त्रियों की पीड़ा यथार्थ रूप में सामने आ सकेगी। दलित स्त्रियों को आंदोलन से जोड़े बिना न साहित्य आगे बढ़ सकता है नहीं समाज। उनकी उपेक्षा सम्पूर्ण दलित समाज की उपेक्षा है- "दलितों और स्त्रियों के अस्मिता आंदोलनों की उपेक्षा करना तो न तो किसी मानव मुक्ति की कल्पना की जा सकती है न मानव मुक्ति की वृहत्तर जीवन मूल्यों से जुड़े बिना अस्मिताओं के ये आंदोलन आने व्यापक लक्ष्य को ही पा सकते हैं।"[12]

दरअसल दलित साहित्य में पुरुषों ने तो अपना स्थान बना लिया है लेकिन दलित स्त्रियों के लिए उतना स्पेस नहीं मिला है। उनके द्वारा बनाए गए संगठन भी नहीं है और अगर हैं तो ठीक से काम नहीं कर पा रहे हैं। दलित साहित्य के समाजशास्त्र को बिना महिलाओं के समझा ही नहीं जा सकता- बाबा साहब आंबेडकर स्त्रियों का बहुत सम्मान करते थे। इस प्रकार देखें तो दलित कहानियों ने मात्र 20-25 वर्ष में ही साहित्य में अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया है। दलित साहित्यकारों ने अपनी कहनियों में दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को मज़बूती से उठाते हुए उनके अधिकार और अस्मिता के प्रश्नों को भी प्रासंगिक बनाया है। आज जिस मात्रा में दलित साहित्य लिखा जा रहा है भविष्य में उसका स्वतंत्र इतिहास लिखने की आवश्यकता होगी। दलित साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास ही उसे सही दिशा में ले जा सकता है। महिला भागीदारी को बढ़ाना बहुत आवश्यक है तभी दलित साहित्य अपने सामाजिक सरोकारों को सही मायनों में प्रस्तुत कर पाएगा।

भारत में दलित साहित्य की गूँज छठे दशक से सुनाई देने लगी। दलित स्वर अब समस्त समाज को अपनी वाणी से परिचालित और उद्वेलित कर रहा है। आज़ादी के पश्चात् नया संविधन 1950 में लागू हुआ और लोकतंत्र की स्थापना हुई। लोकतंत्र के अंतर्गत धर्म, जाति, लिंग और वर्ण से परे समतामूलक समाज के निर्माण और सामाजिक न्याय तक प्रत्येक भारतीय की पहुँच की आकांक्षा के साथ दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव आम्बेडकर के नेतृत्व में नए भारत के लिए नए संविधान का निर्माण और इसके साथ ही एक नए युग का सूत्रपात हुआ। देखा जाए तो बीसवीं सदी के पूर्वोत्तर में भारतीय राजनीति के मंच पर सक्रिय भूमिका में डॉ. आम्बेडकर ने पहली बार समाज के एक बड़े हिस्से की लड़ाई की शुरुआत की जो दलित था, शूद्र था, अस्पृश्य था, दास की भूमिका में अमानवीय स्थितियों में जीने के लिए अभिशापित था। सामाजिक स्तर पर पूरे दलित समाज को पहली बार डॉ. आम्बेडकर ने उद्वेलित किया और उसे आंदोलनकारी भूमिका प्रदान की। बाबा साहेब ने नारा दिया था शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो- इस बोध वाक्य को दलित समाज ने अपने जीवन का मूलमंत्र बना लिया; संपूर्ण दलित साहित्य अपनी वैचारिक ऊर्जा अम्बेडकर से ही ग्रहण करता है। दलित साहित्य के समस्त विधाओं में दलितों की व्यथा कथा और अनुभवों का यथार्थ चित्रण है।

आक्रोश और नकार दलित साहित्य के दो मुख्य मुद्दे है। सम्पूर्ण भारतीय दलित समाज की स्थिति एक जैसी है। उनके दुःख, संताप एक जैसे हैं और यही कारण है कि दलित लेखन भी अभिव्यक्ति के स्तर पर एक जैसा ही है। दलित लेखन को अगर देखा जाय तो इस क्षेत्र में काव्य सृजन अधिक हुआ है। कविताओं में, पीड़ा में डूबी भावनाओं और विरोध के रूप में प्रहारात्मक तर्क ने जनमानस को बहुत प्रभावित किया । गौरतलब है कि समस्त भारतीय कविता का मूल स्वर वर्णव्यवस्था से पीड़ित समुदाय की वेदना है, जिसकी जड़ में सदियों से सामाजिक न्याय से वंचित, अत्याचार और शोषण का इतिहास है। भारतीय दलित कविता वर्ण व्यवस्था की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक वर्चस्व के ख़िलाफ़ एक मोर्चा है। यह यातनाओं के अतीत के साथ समसामयिक जीवन और परिवेश से जुड़ने के कारण प्रासंगिक है - या यों कहें कि इसकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है, नकार और विद्रोही स्वर के साथ-साथ परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा को भी वाणी दे रही है।

यूँ तो कविता का इतिहास वर्षों पुराना है। विविध छंदों से होती हुई छंद मुक्त हुई कविता के कई रंग देखे जा सकते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी कविता ने कई रंग बिखेरे हैं। साहित्य और समाज का संबंध मनुष्यता के विस्तार के लिए हुआ है। साहित्य शब्द का प्रचलन सातवीं-आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। साहित्य का आरंभ "कविता" से हुआ। आरंभिक समय भारतीय साहित्य में कविता ही अभिव्यक्ति का माध्यम थी। साहित्यिक विधा के रूप में अन्य विधाओं का आगमन अभी नहीं हुआ था लिहाजा काव्य रूप

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

को ही साहित्य माना गया। संस्कृत में साहित्य के स्थान पर 'काव्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। उस समय के विख्यात आचार्यों ने साहित्य को अपनी मान्यता के अनुसार व्याख्यायित करने का प्रयास किया। भामह, राजशेखर, कुंतक आदि आचार्यों ने काव्य की परिभाषा देते हुए शब्द और अर्थ के तमाम पक्षों पर विचार किया, जिसमें शब्द और अर्थ का सहभाव ही 'काव्य' अथवा 'साहित्य' माना। कुछ समय बाद आपसी स्वीकृति और समझौते के बाद संस्कृत में भी साहित्य शब्द का प्रयोग होने लगा। आगे चलकर 'काव्य' शब्द 'साहित्य' शब्द के अर्थ में रूढ़ हो गया। आधुनिक काल में कविता ही मात्र अभिव्यक्ति का साधन नहीं रह गयी। साहित्यकारों और चिंतकों ने लेखन को आम जनता तक ले जाने के उद्देश्य से उसे विस्तारित और सरल किया। विस्तार की इसी प्रक्रिया में तमाम अन्य विधाओं का भी जन्म हुआ जिसमें नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध के साथ समीक्षा और आलोचना का भी विकास हुआ। इन तमाम विधाओं को 'साहित्य' कहने से कोई अवरोध नहीं दिखता। बल्कि कविता को साहित्य कहने से सीमित अर्थ की ध्वनि उत्पन्न होती है। साहित्य अन्य कलाओं से से अलग समाज से संबंध बनाने में अधिक प्रभावशाली है। समाज और साहित्य के बीच भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। बिना भाषा इस संबंध की कल्पना ही संभव नहीं है। जिस भाषा को प्रयोग करने वालों की संख्या जितनी कम होगी उसका साहित्य उतना ही कमज़ोर और सीमित होगा। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने साहित्य और समाज के संबंध को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "साहित्य और जीवन का क्या संबंध है, यह प्रश्न है आज एक विशेष प्रयोजन से पूछा जाता है। वर्तमान भारतीय समाज एक ऐसी अवस्था पर पहुँच गया है जिसके आगे अज्ञात संभावनाएँ छिपी हुई हैं। विशेषतः हमारे शिक्षित नवयुवकों के लिए यह क्रांति की घड़ी है।"[13] महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्यिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ते हुए कहते हैं- "जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है, उसके साहित्य रूपी आईने में ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति के जीवन शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी।[14]

भारतीय समाज और साहित्य का गहरा सम्बन्ध हैं और दोनों एक दूसरे के पूरक है। साहित्य समाज आत्मा साहित्य है। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है और मस्तिष्क वही ग्रहण करता है जो समाज से उसे प्राप्त होता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग हो सकता है और न साहित्य से। मनुष्य का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन निर्वहन भी समाज में ही होता है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनकर अनेक अनुभव ग्रहण करता है, जब वह इन अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तो साहित्य का रूप बन जाता है। शब्दों की यही अभिव्यक्ति आदमी को श्रेष्ठ एवं साहित्यकार बना देती है। साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है। साहित्यकार का कर्म ही है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व-बन्धुत्व के सदभाव के साथ हाशिये के आदमी के जीवन को ऊपर उठाने में उसकी मदद करे। साहित्य का आधार ही जीवन है। साहित्यकार समाज और अपने युग की को साथ लिए बिना रचना कर ही नहीं सकता है क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज के अस्मिता की पहचान होता है। भारत की आज़ादी के संग्राम के समय भारतीय समाज और साहित्य का पता दुनिया को हो चुका है। अंग्रेज़ों को देश छोड़कर भागना पड़ा, इसमें भारतीय समाज और साहित्य की बहुत बड़ी भूमिका रही। साहित्य मानव जीवन को परिवर्तन के साथ अन्य मानवजाति को जोड़ता भी है इसीलिये हमारे समाज में साहित्य, समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। साहित्य बीते हुये कल का आईना है और भविष्य के जीवन को दिशा देने वाला भी है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता साहित्य जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। वाल्मीकि, कालीदास, रविदास, सूरदास, तुलसीदास एवं आधुनिक युग के साहित्यकारों की रचनाएँ आज के पूँजीवादी और व्यावसायिक युग में भी आधुनिक समाज का दिशा निर्देशन करने में सक्षम हैं।

आधुनिक भारतीय दलित कविता में आक्रोश और विद्रोह का स्वर सर्वप्रथम मराठी कविता में प्रस्फुटित होता है। उसके पश्चात् इसका प्रभाव भारत के सभी भाषा के दलित कविताओं और अन्य साहित्य पर पड़ता है। हालाँकि दलित कविता की धारा प्राचीन काल से ही सिद्ध और नाथ कवियों के रूप में मिलती है परन्तु मुखरता और प्रखरता आधुनिक काल के दलित कवियों में ज़्यादा परिलक्षित होती है। हिंदी दलित कविता का आरम्भ 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है जो 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई।

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

इस कविता में दलित समाज के जीवन-व्यथा, शोषण तथा अन्याय का चित्रण करते हुए कवि ने भगवान की महिमा पर भी प्रश्न-चिह्न लगाते हुए, ईश्वर की सत्ता का भी खंडन करता हुआ प्रतीत होता हैः-

‘हमनी के राति दिन दुःखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइब,
हमनी के दुख भगवनओं न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइब’

जाति-व्यवस्था से ही जुड़ी हुई है शोषण की कहानी जिसके कारण दलितों को ग़रीबी और जहालत का जीवन जीने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है। उन्हें ग़रीबी की बदबूदार गलियों से गुज़रना पड़ता है और अभावग्रस्त जीवन के दंश को झेलना और भोगना पड़ता है। दलित कवि समाज को अपनी कविताओं के माध्यम से दलित होने की पीड़ा से अवगत करता है। हाड़-तोड़ परिश्रम के बावजूद भी दलितों को न तो समाज में अधिकार प्राप्त है न ही पेट भर भोजन। ऐसे में व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव और सामाजिक बनावट के प्रतिकार की भावना जागृत होना स्वाभाविक हैः-

हड्डियों को निचोड़कर
निकाला गया है तेल
किन्तु इतना याद रखें
जिस रोज इंकार कर दिया
दीया बनने से मेरे जिस्म ने
अँधेरे में खो जाओगे
हमेशा-हमेशा के लिए।‘

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- “दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सजन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही यह संभव है।”[15] भारतीय दलित कविता में इन्हीं संवेदनाओं और अनुभूतियों का अंकन और चित्रण हुआ है। दलित कवि लिखता हैः-

‘हाथों में है अथाह शक्ति
सीने में है धैर्य
मन में है विश्वास
फिर भी सही दुत्कार
नहीं बोये कांटे बांटे
सिर्फ़ सगुन प्यार के
फिर भी रहे अछूत।‘16

अपने ही देश में अनजानेपन का दंश झेलता दलित एक लम्बे समय से अपनी अस्मिता की तलाश में भटक रहा है। कई पड़ाव इस दौरान पार किये हैं परन्तु मंज़िल अभी कोसों दूर है। परन्तु वह विश्वास से पूर्ण है कि वह अपने अस्तित्व की रक्षा कई संघर्षों के बावजूद भी करेगा और उसे मंज़िल मिलेगी इसके प्रति आशान्वित भी है।

भारतीय दलित कविता समस्त दलितों, पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण की पुकार है, जिसमें दलितों के शोषण, ग़रीबी और जहालत के साथ ही परिवर्तन की परिस्थितियों को वाणी दी गयी है। आधुनिक दलित कविता की धरा मराठी से प्रस्फुटित होती हुई गुजराती, पंजाबी, उड़िया, कन्नड़ तथा हिंदी तक व्याप्त होती जा रही है। दलितों की स्थिति भारत के प्रत्येक भू-भाग में एक जैसी है, ज़ाहिर है कि उनका स्वर भी एक जैसा होगा चाहे वे दया पवार हों, या पंजाबी के गुरुदास राम ‘आलम’ हों या फिर उड़िया के विचित्राचंद नायक हों या गुजराती के मंगल परमार या हिंदी के ओमप्रकाश वाल्मीकि हों। समस्त भारतीय दलित आगे बढ़ रहे हैं। सदियों से प्रचलित परम्परा और विचारधारा का खुलकर विरोध करना ही दलित कविता का उद्देश्य है। ये कविताएँ दलितों के पीड़ा और उनके साथ हुए अन्याय का दस्तावेज़ हैं। वह न्याय जो इन्हें सदियों से नहीं मिला, मानव होने के बावजूद भी

Copyright @ 2022 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-12 Issue-01 No.01: 2022

मानव के अधिकारों से इन्हें दूर रखा गया। यही भावबोध की क्षमता और कटु अनुभूतियों की प्रमाणिकता ही दलितों को न्याय दिलाएगी। इतिहास में जिसकी सूरत दिखाई नहीं देती, उसी सूरत की खोज करती हैं ये कविताएँ। ये अस्मिता की पहचान का दस्तावेज़ हैं और प्रासंगिक भी हैं। भारत महाशक्ति तभी बन सकता जब भारतीय समाज का यह बड़ा तबक़ा जिसे हाशिये पर रखा गया है, उसे मुख्यधारा में समावेशित किया जाएगा और वो भी उसके पूरे अधिकारों के साथ अपनी विशिष्ट भाषाई दक्षता के साथ दलित कविता अपने आप में सशक्त साहित्य है जो जनमानस के मस्तिष्क के तार को झंकृत करता है और सोचने पर विवश करता है और यही उसकी सफलता है और यही भारतीय दलित कविता की प्रासंगिकता भी है।

समग्रता में देखें तो हिन्दी में दलित साहित्य का आना उसके लिए सुखद ही रहा क्योंकि यह सच है कि हिन्दी साहित्य से जुड़ते ही दलित साहित्य व्यापक स्तर पर चर्चित हुआ जिसकी पहुँच बड़ी है। दलित साहित्यकार भाषा में चमत्कार दिखाने के लिए नहीं लिखता न ही किसी को ख़ुश करने के लिए बल्कि वह लिखता है अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए। पाठक इसीलिए उससे जुड़ भी जाता है क्योंकि उसे दलित साहित्य की संवेदना झूठी नहीं लगती है। उसमें छुपे सत्य को वह महसूसता है और उसे आत्मसात करता है। आज दलित विमर्श विश्व स्तर का मुद्दा है तो उसमें सिर्फ़ दलितों की मेहनत और दृष्टि है।

संदर्भ सूची:

1. दलित साहित्य की भूमिका: कंवल भारती, पृष्ठ 67
2.http://www.bbc.com/hindi/entertainment/story/2005/07/050729_premchand_dalit.shtml
3. कथा-क्रम, दलित विशेषांक, नवम्बर 2000, पृ. 115
4. http://www.apnimaati.com/2016/01/blog-post_68.html
5. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, अनुवादक– आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध, 'जातिभेद का बीजनाश', पृ. 31
6. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध (अनुवादक) 'जातिभेद का बीजनाश' सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-35
7. दिलीप काठेरिया, दरारें, दलित अस्मिता, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ 59
8. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध (अनुवादक) 'जातिभेद का बीजनाश' सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-35
9. डॉ. संजय बाग, हीरो(कहानी), दलित अस्मिता पत्रिका, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ 4
10. वही, पृष्ठ 46
11. संपादकीय, जातिप्रथा के अभिशाप से त्रस्त विश्व का महान जनतंत्र, दलित अस्मिता, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ 9
12. चौथीराम यादव, दलित चिंतन की प्रतिपरंपरा और कबीर, दलित अस्मिता, अक्तूबर-दिसंबर 2010, पृष्ठ
13. हिन्दी साहित्य: रचना और विचार, नन्द दुलारे वाजपेयी, पृष्ट-20
14. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडे, पृष्ठ- 58
15. ओमपकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 59
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ 53

Copyright @ 2022 Author